M.A. Political Science (Previous)

Semester - II [

Paper Code –

INDIAN GOVERNMENT & POLITICS - II

भारतीय सरकार और राजनीति - II

Semester – II

Syllabi – Book Maping Table

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
ईकाई–1	भारतीय संघवाद	8–50
	संघवाद : प्रकृति एवं कार्यपद्धति,	10–22
	राज्य स्वायत्ता की मांग तथा पृथकतावादी आन्दोलन	23–34
	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	35–50
ईकाई–2	भारतीय न्यायपालिका	51–84
	सर्वोच्च न्यायालय	53–62
	उच्च न्यायालय	62–66
	न्यायिक पुनर्निरीक्षण	66–71
	न्यायिक सक्रियता	71–75
	जनहित एवं न्यायिक सुधार	75–81
ईकाई–3	भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप व कार्यप्रणाली	85–170
	राजनैतिक दल	87–126
	दबाव समूह	129–148
	जनमत,	151–154
	मीडिया	157–160
	किसान आन्दोलन	163–168
ईकाई–4	भारतीय राजनीति एवं चुनौतियाँ	171–273
	राजनीति और जाति	173–182
	वर्णन राजनीति,	186–189
	महिलाओं की स्थिति एवं विकास,	192–200
	दलित मुद्दे	203–211
	क्षेत्रीयवाद	214–227
	राष्ट्र निर्माण की समस्या एवं राष्ट्रीयएकीकरण	231–254
	पंचायती राज	257–271

Semester - II

विषय सूची

इकाई संग्रह	विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
ईकाई–1	भारतीय संघवाद	8–50
1.0	ईकाई परिचय	8
1.1	ईकाई उद्देश्य	8–9
1.2	संघवाद : प्रकृति एवं कार्यपद्धति	10–20
1.2.1	परिचय	10
1.2.2	उद्देश्य	10
1.2.3	संघवाद का स्वरूप	11–19
1.2.4	निष्कर्ष	19
1.2.5	मुख्य शब्दावली	19–20
1.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	20
1.2.7	सन्दर्भ सूची	20–22
1.3	राज्य स्वायत्ता की मांग तथा पृथकतावादी आन्दोलन	23–31
1.3.1	परिचय	23
1.3.2	उद्देश्य	24
1.3.3	राज्यों की स्वायत्ता का अर्थ	24–31
1.3.4	निष्कर्ष	31–32
1.3.5	मुख्य शब्दावली	32
1.3.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	32–33
1.3.7	सन्दर्भ सूची	33–34
1.4	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	35–47
1.4.1	परिचय	35

1.4.2	उद्देश्य	35–36
1.4.3	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	36–47
1.4.4	निष्कर्ष	47–48
1.4.5	मुख्य शब्दावली	48
1.4.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	48–49
1.4.7	सन्दर्भ सूची	49–50
ईकाई–2	भारत की न्याय व्यवस्था	51–84
2.0	ईकाई परिचय	51
2.1	ईकाई उद्देश्य	51
2.2	भारत की न्याय व्यवस्था (सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय, न्यायिक पुनर्निरीक्षण, न्यायिक सक्रियता, जनहित याचिका एवं न्यायिक सुधार)	52–81
2.2.1	परिचय	52–53
2.2.2	उद्देश्य	53
2.2.3	सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं सम्बन्धित विशेष शक्तियाँ	53–81
2.2.4	निष्कर्ष	81
2.2.5	मुख्य शब्दावली	81–82
2.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	82
2.2.7	सन्दर्भ सूची	82–84
ईकाई–3	भारत में दलीय व्यवस्था का स्वरूप व कार्यप्रणाली	85–170
3.0	ईकाई परिचय	85–86
3.1	ईकाई उद्देश्य	86
3.2	भारतीय राजनीतिक दल	87–125
3.2.1	परिचय	87

3.2.2	उद्देश्य	87
3.2.3	भारतीय राजनीतिक दलों का विकास	87–125
3.2.4	निष्कर्ष	125
3.2.5	मुख्य शब्दावली	125
3.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	126
3.2.7	सन्दर्भ सूची	126–128
3.3	भारतीय राजनीति में दबाव समूह	129–147
3.3.1	परिचय	129
3.3.2	उद्देश्य	129
3.3.3	दबाव समूह अर्थ एवं परिभाषा	129–147
3.3.4	निष्कर्ष	147–148
3.3.5	मुख्य शब्दावली	148
3.3.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	148
3.3.7	सन्दर्भ सूची	148–150
3.4	जनमत	151–154
3.4.1	परिचय	151–152
3.4.2	उद्देश्य	152
3.4.3	जनमत का महत्त्व	152–154
3.4.4	निष्कर्ष	154
3.4.5	मुख्य शब्दावली	154
3.4.6	अभ्यास हेतु प्रश्न	154–155
3.4.7	सन्दर्भ सूची	155–156
3.5	मीडिया	157–160
3.5.1	परिचय	157
3.5.2	उद्देश्य	157

3.5.3	मीडिया का महत्त्व	157–160
3.5.4	निष्कर्ष	160
3.5.5	मुख्य शब्दावली	160
3.5.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	160
3.5.7	सन्दर्भ सूची	160–162
3.6	किसान आन्दोलन	163–167
3.6.1	परिचय	163–164
3.6.2	उद्देश्य	164
3.6.3	विभिन्न किसान आन्दोलन	164–167
3.6.4	निष्कर्ष	167–168
3.6.5	मुख्य शब्दावली	168
3.6.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	168
3.6.7	सन्दर्भ सूची	168–170
ईकाई–4	भारतीय राजनीति और चुनौतियाँ	171–273
4.0	ईकाई परिचय	171
4.1	ईकाई उद्देश्य	171–172
4.2	जाति और भारतीय राजनीति	173–182
4.2.1	परिचय	173
4.2.2	उद्देश्य	173
4.2.3	जाति का परम्परागत अर्थ एवं स्वरूप	173–182
4.2.4	निष्कर्ष	182
4.2.5	मुख्य शब्दावली	182–183
4.2.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	183
4.2.7	सन्दर्भ सूची	183–185
4.3	वर्ग राजनीति	186–189

4.3.1	परिचय	186
4.3.2	उद्देश्य	186
4.3.3	भारत में वर्ग राजनीति का स्वरूप	186–189
4.3.4	निष्कर्ष	188
4.3.5	मुख्य शब्दावली	188–189
4.3.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	189
4.3.7	सन्दर्भ सूची	189–191
4.4	महिलाओं की स्थिति और विकास	192–200
4.4.1	परिचय	192
4.4.2	उद्देश्य	192
4.4.3	महिलाओं की स्थिति	192–200
4.4.4	निष्कर्ष	199–200
4.4.5	मुख्य शब्दावली	200
4.4.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	200
4.4.7	सन्दर्भ सूची	200–202
4.5	दलित	203–211
4.5.1	परिचय	203–204
4.5.2	उद्देश्य	204
4.5.3	दलित मुद्दे एवं आरक्षण का प्रावधान	205–211
4.5.4	निष्कर्ष	210
4.5.5	मुख्य शब्दावली	210–211
4.5.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	211
4.5.7	सन्दर्भ सूची	211–213
4.6	क्षेत्रीयवाद	214–227
4.6.1	परिचय	214

4.6.2	उद्देश्य	214–215
4.6.3	क्षेत्रवाद के कारण	215–227
4.6.4	निष्कर्ष	227
4.6.5	मुख्य शब्दावली	227
4.6.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	227–228
4.6.7	सन्दर्भ सूची	228–230
4.7	राष्ट्र–निर्माण की समस्या एवं राष्ट्रीय एकीकरण	231–254
4.7.1	परिचय	231
4.7.2	उद्देश्य	231
4.7.3	राष्ट्र–निर्माण व राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या	231–254
4.7.4	निष्कर्ष	253–254
4.7.5	मुख्य शब्दावली	254
4.7.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	254
4.7.7	सन्दर्भ सूची	254–256
4.8	पंचायती राज	257–271
4.8.1	परिचय	257–258
4.8.2	उद्देश्य	258
4.8.3	संविधान तथा पंचायती राज	258–271
4.8.4	निष्कर्ष	271
4.8.5	मुख्य शब्दावली	271
4.8.6	अभ्यास हेतू प्रश्न	271–272
4.8.7	सन्दर्भ सूची	272––273

समैस्टर – 2

ईकाई – 1

भारतीय संघवाद

1.0 ईकाई परिचय

भारतीय संविधान निर्माताओं के सामने मुख्य प्रश्न था कि संविधान का स्वरूप एकात्मक हो या संघात्मक। लेकिन संविधान निर्माताओं ने अपनी सूझबूझ के आधार पर बीच का मार्ग चुना अर्थात् आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करके संविधान को बनाया। भारतीय संविधान सिद्धान्त में तो संघात्मक है लेकिन व्यवहार में उसका झुकाव एकात्मकता की ओर है।

भारतीय संविधान का स्वरूप आज भी संविधान विशेषज्ञों के मध्य विवाद का विषय बना हुआ है। संविधान के अंगीकृत हो जाने के बाद भी यह विवाद समाप्त नहीं हुआ। हमारे संविधान–निर्माताओं का ध्येय कोई मौलिक संविधान बनाना नहीं था अपितु वे तो एक 'कामचलाऊ' और 'व्यवहारिक' संविधान बनाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने प्रचलित संघीय संविधानों से केवल ऐसे तत्त्वों को लिया जिन्हें उन्होंने उपयोगी समझा। भारतीय संविधान के व्यवहारिक रूप में एकात्मकता की तरफ झुकाव होने से केन्द्र व राज्यों के मध्य भी लगातार तनाव बना रहता है। राज्य जहां अधिक स्वायत्ता की मांग करते है तो केन्द्र उनकी मांगों को अनसुना कर देता है। राज्य व केन्द्र में विरोधी सरकार होने पर केन्द्र सरकार राज्यों पर अपनी स्वेच्छाचारी शक्तियों का उपयोग करती रही है। जिससे दोनों के मध्य विवाद पैदा होते हैं।

1.1 उद्देश्य

- सरकारों के संघीय व एकात्मक स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन
- भारत के संघीय स्वरूप का आलोचनात्मक मूल्यांकन
- भारतीय संविधान के एकात्मकता की तरफ झुकाव के कारण जानना

- क्या पिछले 70 वर्षों में भारतीय संघवाद का स्वरूप बदलता रहा है या नहीं इन बदलावों के पीछे क्या कारण है
- केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का मूल्यांकन

1.2 संघवाद : प्रकृति तथा कार्यपद्धति

(Federalism : Nature and Working)

1.2.1 परिचय

भारतीय संविधान निर्माता भारत के लिए एक संघीय राज्य की व्यवस्था चाहते थे। लेकिन वे इस बात से भी सहमत थे कि प्रत्येक इकाई सरकार को अपने विकास का पूर्ण अवसर मिलें। अतः उनका विचार था कि भारत एक ऐसा संघात्मक शासन होना चाहिए जिसमें केन्द्र शक्तिशाली हो।

यद्यपि हमारा संविधान संघ राज्य की स्थापना करता है फिर भी 'संघ' शब्द के स्थान पर 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया है। डॉ० बी०आर० अम्बेडकर ने संविधान का प्रारूप संविधान सभा में प्रस्तुत करते हुए भारतीय गणराज्य को केवल संघात्मक राज्य की ही संज्ञा नहीं दी परन्तु कहा कि इसमें दो प्रकार की सरकारें होगी जिन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त क्षेत्र में सार्वभौम शक्तियां प्राप्त होगी। उन्होंने अमरीका तथा भारतीय संघ कि तुलना करते हुए कहा था कि अमरीका में केन्द्र तथा राज्यों के बीच ढीलाढाला सम्बन्ध है जबकि भारत एक ऐसा संघ है जिसमें कोई भी राज्य अलग नहीं हो सकता और जिसके अन्तर्गत उन्हें कार्य करना ही हैं।

1.2.2 उद्देश्य

- संघवाद क्या है ये जानना
- भारत में संघीय व्यवस्था का स्वरूप कैसा है
- संघीय व्यवस्था व एकात्मक व्यवस्था में क्या अन्तर है
- क्या भारत एक पूर्ण संघवादी राज्य है
- क्या भारत एक एकात्मक स्वरूप वाला राज्य है

1.2.3 संघवाद का स्वरूप

भारतीय संघ कि प्रकृति को भिन्न–भिन्न प्रकार से वर्णित किया गया है। के०सी० व्हीपर भारतीय संघ को अर्ध–संघ (Quasi-Federation) कहा है। सर आईवर जैंनिगज ने कहा है कि ऐसा संघ राज्य नहीं जिसमें एकात्मक लक्षण सहायक लक्षण के रूप में दिए गए हो। यह तो एकात्मक राज्य है जिसमें संघात्मक लक्षण सहायक लक्षण के रूप में दिए गए है। यह तो ऐसा संघवाद है जिसमें मजबूत केन्द्रियकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। के० सन्थानम ने भारत के संघ को एक सूडों फेडंरेशन (Pseudo Federations) तथा एक सार्वभौम संघ (Paramovent Federation) कहा है। प्रो० सी०एच० ऐलक्जेण्ड्रोविच (C.H. Allexandrowich) ने इसको ऐसा संघवाद कहा है जिसमें प्रभुता लम्बवत् विभिन्न है। के०पी० मुखर्जी ने तो यहाँ तक कहा है कि भारत एक संघात्मक राज्य है ही नहीं। डी०सी० बनर्जी का विचार है कि भारतीय संविधान का ढांचा संघीय है, किन्तु उसका झुकाव एकात्मकता की ओर है। डी०डी० बसु का विचार है कि ''भारत का संविधान न तो पूर्णरूप से एकात्मक है और न ही पूर्णरूप से संघात्मक, बल्कि दोनों का सम्मिश्रण है।'' नारमन डी० पामर के अनुसार, ''भारतीय गणतन्त्र एक संघ है तथा उसकी अपनी विशेषताएँ है जिन्होंने संघीय स्वरूप को अपने ढंग से ढाला है।'' प्रो० पायली के विचार है कि ''भारत के संविधान का ढांचा संघात्मक है, किन्तु उसकी आत्मा एकात्मक है।'' डॉ० सुभाष कश्यप का विचार है कि संविधान दोहरे शासनतंत्र की स्थापना करता है। सरकारों की दो श्रेणियां हैं, संघ की सरकार और अवयवी राज्यों की सरकारें संविधान ने संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का वितरण किया है। ... संघवाद के इन लक्षणों के बावजूद भारतीय संविधान का प्रयत्न एकात्मकता का है।

ग्रेनविल ऑस्टिन (Granville Austin) ने कहा है कि भारत की संविधान सभा वह पहली सभा थी जिसने शुरू में ही सरकारी संघवाद की धारणा को अपनाया। आस्टिन के अनुसार प्रान्तिय सरकार बहुत हद तक केन्द्रिय नीतियों के लिए प्रशासनीय एजेन्सियाँ हैं। उन्होंने ए०च० बिर्च (A.H. Birch) को उद्धृत किया है। जिन्होंने सहकारी संघवाद की परिभाषा दी है जो इस प्रकार है : सामान्य तथा क्षेत्रिय सरकारों

में प्रशासकीय सहयोग कि प्रथा, क्षेत्रिय सरकारों का सामान्य सरकार पर अदायगी के लिए अशतः निर्भरता और यह तथ्य कि सामान्य सरकारें शर्त वाले अनुदानों के प्रयोग से प्राय उन विषयों के विकास को बढ़ाती हैं जो संवैधानिक तौर से क्षेत्रों को सौंपे गए हैं – सहकारी संघवाद कहलाता है।

ऑस्टिन का विचार है कि ए०एच० बिर्च कि सरकारी संघवाद कि उपरालिखित परिभाषा भारत के लिए उचित प्रतीत होती है। हम भारतीय संघ कि प्रकृति के लिए इस परिभाषा से सहमत है लेकिन हमारे विचार में केन्द्र व प्रांतीय सरकारों में केवल प्रशासनिक सहयोग ही नहीं अपितु राजनीतिक सहयोग भी पाया जाता है।

प्रो० मैरिस जान्स का कहना है कि भारत में जो संघवाद है वह सौदेबाजी वाले संघवाद की धारणा का उदाहरण है। वे कहते है कि भारत में संघवाद 'सहकारी संघवाद' का रूप है जिसमें कि कड़ी प्रतियोगिता वाली सौदेबाजी शामिल है। उनके शब्दों में यहीं वास्तव में हमेशा से भारतीय संघवाद का स्वरूप रहा है। वे कहते है कि संविधान में अधिक महत्व सीमांकन पर दिया गया है जबकि वास्तविकता में सहकारी सौदेबाजी के सम्बन्ध पाए जाते है। अपने विचारों के समर्थन में वे कानून प्रक्रिया का उदाहरण देते है। वे कहते है कि राज्य विधानमण्डलों द्वारा बिल के पास होने पर उसको राज्यपाल कि स्वीकृति के लिए भेजा जाता है जोकि बिल पर स्वीकृति देने से इन्कार कर सकता है, पुर्नविचार के लिए भेज सकता है अथवा राष्ट्रपति की सलाह के लिए सुरक्षित रख सकता है, विशेषकर ऐसे बिल जो सम्पत्ति के अर्जन के उद्देश्य से होते है उनको तो अवश्य ही राष्ट्रपति की सलाह के लिए सुरक्षित रखता है। अभी समय के तौर पर राज्य अपने बिलों को पहले ही केन्द्र के पास भेज कर उनका परीक्षण एवं आलोचना जान लेती है ताकि जब सुरक्षित प्रक्रिया को अपनाया जाए तो वह केवल औपचारिक ही रहे। राज्य समवर्ती सूची से सम्बन्धित अधिकांश बिलों को इसी प्रकार केन्द्र के पास पहले ही भेजकर राय प्राप्त कर लेता है।

सहकारी सौदेबाजी का वे दूसरा उदाहरण प्रान्तीय सरकारों और केन्द्र के वित्तीय सम्बन्धों से देते है। उनका कहना है कि भारतीय संविधान में एक स्वतंत्र वित्त आयोग कि स्थापना कि गई है जोकि प्रत्येक पांच वर्ष के लिए कार्य करता है। यही

आयोग करों के वितरण तथा केन्द्र से अनुदान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। लेकिन संविधान के अन्तर्गत अनुच्छेद 282 के मचिंग अनुदान (Matching Grants) के कारण वित्त आयोग का महत्व घट गया है। ये अनुदानें संघीय नियोजन वित्त में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत इन मंचिग अनुदानों की प्राप्ति के लिए केन्द्रिय सरकार एवं प्रान्तिय सरकारों में कड़ी प्रतियोगिता वाली सौदेबाजी जारी रहती है। मैंरिस जोन्स का कहना है कि यह भारत में सौदेबाजी वाले संघवाद के स्वरूप के वर्णन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। वास्तव में भारतीय संघवाद में दो विभिन्न प्रवृतियों केन्द्र से हट जाने वाली (Centrifugal) एवं केन्द्र की ओर जाने वाली (Contripetal) शक्तियों में समन्वय पाया जाता हैं भारतीय संघवाद के स्वरूप का संविधान की धाराओं से ही पता नहीं लगता परन्तु इन विभिन्न एवं संघर्षरत शक्तियों से भी स्पष्ट होता है। संघवाद केवल केन्द्र और इकाइयों में मुख्यतः शक्तियों के विभाजन की प्रक्रिया ही नहीं है। लेकिन इन शक्तियों का विभाजन राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक शक्तियों तथा प्रवृतियों और अन्तिम रूप से वित्तीय विचारधारा से प्रभावित होता है, अगर यह निर्धारित नहीं होता तो।

कुछ आलोचकों का कहना हैं कि भारत में अत्याधिक केन्द्रियकरण का भय है। यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि केन्द्रियकरण की प्रवृति केवल भारत में ही नहीं पाया जाती परन्तु वास्तव में विश्व के सभी संघात्मक सरकारों में संघीय शक्तियों में वृद्धि हुई है। इन आलोचकों के विपरीत दूसरे आलोचकों का कहना है कि अन्य संघीय देशों की तुलना में भारतीय संघवाद में केन्द्रिय सरकार के पास कम शक्तियां है और उनका कहना है कि केन्द्रिय सरकार को ओर अधिक शक्तियां देने कि आवश्यकता है। इनका कहना है कि सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए एवं आर्थिक दृष्टि से अविकसित देश के लिए तो इसकी महता और भी बढ़ जाती है। यह विचार पाल एवलबी (Paul Apple by) का प्रस्तुत किया हुआ है। जिन्होंने भारतीय प्रशासन का विस्तार के साथ अध्ययन किया।

भारतीय संघवाद की प्रमुख विशेषताएं (Salient Features of India Federalism)

जो हमारा सहकारी संघवाद है उसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है। इन विशेषताओं से यह भी स्पष्ट हो जाता हैं कि भारत का संघवाद एक ऐसा है। जिसमें केन्द्र सरकार को स्पष्टतौर पर शक्तिशाली माना गया है। संविधान में ही ऐसी व्यवस्था है कि केन्द्र शक्तिशाली हो –

1. परम्परागत तौर पर ऐसा विश्वास किया जाता रहा है कि किसी भी संघीय सरकार में निम्नलिखित तीन प्रमुख विशेषताएं आवश्यक हैं। ये प्रो० ए०बी० डायसी की धारण पर आधारित है –

- संविधान की सर्वोच्चता हो,
- संघ तथा इकाईयों में शक्तियों का विभाजन हो।
- एक उच्चतम न्यायालय हो जो संविधान की व्याख्या कर सके और उस व्याख्या का अन्तिम माना जाए ये तीनों विशेषताएं भारतीय संविधान में पायी जाती है।

2. विश्व के अन्य संविधानों में, स्वतंत्र राज्यों को एक सामान्य केन्द्रीय सरकार में शामिल करने के लिए संघवाद को अपनाया गया। अतः नयी संघात्मक सरकार पर बल के साथ–साथ इकाई राज्यों की स्वतंत्रता बनाये रखने पर भी बल दिया गया। इस उद्देश्य के लिए इन संघवादों के संविधानों में बहुत सी धाराओं को शामिल किया गया। इसके विपरीत भारत में जिस प्रकार संघात्मक सरकार का निर्माण हुआ, ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी प्रक्रिया भिन्न है। 1935 के अधिनियम से पहले ब्रिटिश भारत में स्वायत प्रान्त नहीं थे बल्कि यहां पर एकात्मक शासन प्रणाली थी। जब भारत में संघवाद को लागू किया गया तो इसका उद्देश्य ब्रिटिश भारत को बहुत से स्वायत प्रान्तों में बटना था।
3. भारतीय संविधान के अन्तर्गत अनुच्छेद 3 में यह दिया गया है कि बिना संविधान संशोधन कि प्रक्रिया अपनाए प्रत्येक राज्य के क्षेत्रिय अधिकार को बदला जा सकता है।
4. संविधान में एकल नागरिकता (Single citizen ship) को दिया गया है।

5. एकल जुड़ी हुई न्यायिक प्रणाली है (Single Integrated Judicial System)
6. संघ एवं राज्यों के लिए एकल संविधान है। (Single Constitution)
7. राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते है। वे राष्ट्रपति की इच्छापर्यन्त पद पर बने रहते है।
8. उच्च न्याायलयों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
9. भारत के (The Comptroller and Auditors Geneal of India) कि नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती हैं, उसका पद राज्यों और संघ सरकारों के हिसाब की जांच करना है।
10. चुनाव आयोग राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।
11. राष्ट्रपति संघ लोक सेवा आयोग के सदस्यों कि नियुक्ति करता हैं।
12. कुछ एक विधेयक राज्य विधानमण्डलों से पास होने के बाद राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए रखे जाते है। केवल राष्ट्रपति को स्वीकृति के बाद ही ऐसा विधेयक कानून बन सकते है।
13. संसद के उपरी सदन के प्रतिनिधित्व में समानता के सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है। प्रत्येक राज्य जनसंख्या को आधार माना है।
14. विश्व के सभी संघात्मक संविधानों में से भारतीय संविधान कम कठोर है तथा यह कुछ लचीला भी है।

व्यवहार में भारतीय संघवाद (Indian Federalism in Working)

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ संघवाद के स्वरूप में भी परिवर्तन आता रहा है। भारत की संघ व्यवस्था को राजनीतिक तत्त्वों के बदलते परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित चार प्रकार से चित्रित किया जा सकता है –

1. केन्द्रीकृत संघवाद का युग
2. सहयोगी संघवाद का युग
3. एकात्मक संघवाद का युग
4. सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था

1. **केन्द्रीकृत संघवाद का युग :** सन् 1950 से 1967 तक 'केन्द्रीकृत संघवाद का युग' कहा जा सकता है। सन् 1950 से 1964 तक का भारतीय राजनीति युग 'नेहरू युग' कहलाता है। इस युग में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध मधुर बने रहे और उनमें उग्र मतभेद उभरकर सामने नहीं आए। इस कारण व्यवहार में कुछ ऐसे राजनीतिक तथ्य उभरे जिन्होंने भारत में केन्द्रीकरण की प्रवृति को पनपने में मदद दी। केन्द्र में नेहरू, पटेल जैसे नेता मौजूद थे। केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस को एकछत्र शासन था, अतः मतभेदों को दल के संगठन स्तर पर ही हल कर लिया जाता था। नेहरू के व्यक्तित्व तथा नेतृत्व–शांति का कोई राज्य विरोध करने तथा कोई नेता मतभेद उत्पन्न करने का साहस नहीं करता था। योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् संघ तथा राज्यों के बीच तालमेल हेतु 'सुपर केबिनेट' के रूप में कार्य कर रही थी और एक दल की प्रधानता के कारण इसके कार्यो को चुनौती नहीं दी जा सकती थी। इस काल में केन्द्रीकरण की सशक्त प्रवृतियों के परिणामस्वरूप भारतीय संघवाद राजनीतिक समन्वय और आर्थिक विकास के दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बना।

2. **सहयोगी संघवाद का युग :** सतिलवाड के अनुसार, चतुर्थ आम चुनाव (1967) के पश्चात् शक्ति का सन्तुलन राज्यों की ओर झुका। कांग्रेस का एकछत्र शासन समाप्त हुआ, केन्द्र में नेहरू जैसा व्यक्तित्व नहीं रहा और राष्ट्रीय विकास परिषद् में अनेक दलों के मुख्यमंत्री अपनी केन्द्र विरोधी आवाज बुलन्द करने लगे। राज्यों में नेहरू के बाद मुख्यमंत्री शक्ति के केन्द्र बन गए और वे केन्द्र को प्रभावित करने लगे। कांग्रेस दल में विभाजन के (1969) पश्चात् लोकसभा में शासक दल अल्पमत में आ गया जिससे केन्द्रीय नेतृत्व को राज्यों की मांगो के आगे झुकना पड़ा।

   1967 के चुनावों के पश्चात संघ व राज्यों के पारम्पारिक संवैधानिक सम्बन्धों के विषय में मतभेद काफी उग्र रूप से उत्पन्न हुए। अधिकतर राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की सरकारें बनी। ये सरकारें संघ सरकार के नियन्त्रण में उस सीमा तक नहीं रहना चाहती थी। जिस सीमा तक कांग्रेस दल की प्रादेशिक

सरकारें पहले रहती थी। प्रत्येक राज्य चाहता था कि केन्द्र द्वारा प्रस्तावित औद्योगिक संस्थानों को उसी के क्षेत्र में स्थापित किया जाए। भाषा के प्रश्न को लेकर संघर्ष उत्पन्न हुआ। केन्द्रीय रिर्जव पुलिस को लेकर मतभेद उत्पन्न हुए और राज्यपालों की नियुक्ति का प्रश्न भी विवाद का कारण बन गया।

केन्द्र और राज्यों के बीच विवादों के उपरान्त भी सहयोग बना रहा और 'सहयोगी संघवाद' के युग का सूत्रपात हुआ। सहयोगी संघवाद का प्रमुख लक्षण केन्द्र और राज्यों की सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता है। इस व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किंतु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्र में कमजोर नहीं होती। चौथे आम चुनाव के बाद प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को मद्रास के श्री अन्नादुराई, उड़ीसा के आ०एन० सिंहदेव, उत्तर प्रदेश के चरण सिंह तथा पंजाब के गुमनाम सिंह जैसे गैर–कांग्रेसी मुख्यमन्त्रियों का विश्वास प्राप्त करने में सफलता मिली। यहां तक कि अक्सर ये मुख्यमंत्री अपनी कठिनाइयों में तथा अपने साझीदारों में मतभेद पैदा होने पर उनसे सलाह लेते थे।

3. **एकात्मक संघवाद का युग** : सन् 1971 के पांचवें लोकसभा के चुनाव तथा 1972 के राज्य विधानमण्डलों के चुनावों और जनवरी 1980 के लोकसभा एवं बाद के विधानसभा चुनावों से दो तथा उभरे प्रथम भारतीय राजनीति में श्रीमती गांधी और संजय गांधी ही सर्वमान्य नेता है तथा द्वितीय कांग्रेस दल ही जनता का नेतृत्व कर सकता है। इससे शक्ति का सन्तुलन केन्द्र की ओर झुक गया जिस द्रुतगति से संविधान में संशोधन किए गए उससे तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि भारत एकात्मकता की ओर उन्मुख हो रहा है। जून 1975 से मार्च 1977 तक तो भारतीय राज्य एकात्मक राज्य में परिवर्तित कर दिया गया था। समूची शक्तियां केन्द्रीय सरकार के हाथों में आ गई। राज्यों के मुख्यमंत्रियों की स्थिति केन्द्रीय सरकार केहाथों में आ गई। राज्यों के मुख्यमंत्रियों की स्थिति केन्द्रीय सरकार के सूबेदार जैसी हो गई। आपातकाल के दौरान मुख्यमन्त्रियों का एक पैर अपने राज्य में रहता था तथा दूसरा दिल्ली में 1 जनवरी 1980 के लोकसभा

चुनावों के बाद केन्द्रीय सरकार ने नौ राज्यों की गैर–कांग्रेसी विधान सभाओं को भंग कर दिया। ऐसा लगने लगा कि देश पुनः एक दल प्रधान व्यवस्था की ओर उन्मुख हो रहा है।

4. **सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था :** छठे आम चुनावों के परिणामों से भारतीय राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन आया। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई और राज्यों में विविध दलों की सरकारों की स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश में जनता पार्टी सत्ता में आई। पंजाब में जनता व अकाली दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी दल, तमिलनाडु व पाण्डिचेरी में अन्नाद्रमुक, कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस, केरल में साम्यवादी दल के नेतृत्व वाला मोर्चा, कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश में कांग्रेसी सरकारें पदासीन थी। केन्द्र की जनता सरकार एक दुर्बल सरकार थी क्योंकि यह विभिन्न घटकों से बनी एक मिली–जुली सरकार के समतुल्य थी। अतः राज्यों की सरकारों ने सौदेबाजी करने का अनवरत यत्न किया। यहां तक कि शांतिमय गैर–जनता राज्य सरकारों ने 'राज्य–स्वायत्तता' का नारा बुलन्द किया। वित्तीय स्त्रोतों के वितरण को लेकर पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने सदैव केन्द्रीय सरकार से दबाव एवं सौदेबाजी की भाषा में बातचीत करने का प्रयत्न किया।

1989–1999 के चुनावों से यह इंगित होता है कि भारत में संघ व्यवस्था का 'सौदेबाजी वाला प्रतिमान' ही कार्यरत था। विश्वनाथ प्रतापसिंह (1989), चन्द्रशेखर (1990), पी०वी० नरसिंहराव (1991), श्री एच०डी० देवगौड़ा (1996) तथा श्री इन्द्रकुमार गुजराल के नेतृत्व में बनने वाली सभी केन्द्रीय सरकारों अल्पमतीय सरकारें थी जिन्हें सत्ता में बने रहने के लिए उन दलों का सहारा लेना पड़ा जो राज्यों में शक्ति के पुंज था। अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें सत्तारूढ़ है। जिनके कन्धों पर केन्द्रीय सरकार टिकी हुई थी और अनेक मसलों पर वे केन्द्र से सौदेबाजी करने से नहीं हिचकिचाती, फरवरी 1998 के लोकसभा चुनावों में किसी भी गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ और भाजपा नेता अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा केन्द्र सरकार बनाने के

दावे को उस समय बड़ा धक्का लगा जब अन्नाद्रमुक नेता जयललिता ने अपने समर्थन की कीमत वसूलने के लिए शांतिमय शर्ते रखी जैसे – कावेरी ट्राइव्यूनल के फैसले पर अमल, सभी नदियों का राष्ट्रीकरण, 69 प्रतिशत आरक्षण को संवैधानिक संरक्षण, राज्यों को आरक्षण का कोटा अपनी जरूरत के हिसाब से तय करने का अधिकार महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण और आठवीं अनुसूची की सभी भाषाओं को राज्यभाषा का दर्जा देना, बीजू जनता दल ने उड़ीसा को विशेष दर्जा प्रान्त राज्य घोषित करने की मांग की। 1999 के चुनाव के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी फिर से प्रधानमंत्री बने। इस सरकार में चूंकि अनेक सदस्य ऐसे थे जो अन्य दलों से सम्बन्ध रखते थे, जिनकी अपने राज्यों में सरकार थी। संघीय सरकार द्वारा क्षेत्रीय दलों के दबाव में रहना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक क्षेत्रीय दल केन्द्रीय सरकार को समर्थन देने के बदले में अपने क्षेत्र (राज्य) के लिए विशेष रियायतें की मांग कर रहा था।

1.2.4 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान रूप में संघात्मक, किन्तु भावना में एकात्मक है। संविधान के द्वारा केन्द्र सरकार को बहुत अधिक शक्तिशाली बनाया गया है और संकटकाल में तो संविधान पूर्णरूप से एकात्मक रूप धारण कर लेता है। वस्तुतः संविधान निर्माण के समय देश की परिस्थितियाँ ऐसी थी, जिनमें केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान करना आवश्यक था। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत में एकात्मक व्यवस्था है। यहाँ साधारण परिस्थितियों में शासन संघात्मक व्यवस्था की तरह चलता है।

1.2.5 प्रमुख शब्दावली

- कठोर संविधान : जिस संविधान में परिवर्तन एक विशेष तथा मुश्किल प्रक्रिया से किया जाए।
- दोहरी शासन व्यवस्था : केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर सरकारों का गठन किया जाना। संघीय व्यवस्था के तहत इसीको अपनाया जाता है।

- संघ सूची : संघीय व्यवस्था वाले राज्यों में शक्तियों का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच किया जाता है। जिन विषयों पर केन्द्र सरकार को कानून बनाने का अधिकार होता है उसे संघ सूची कहा जाता है।
- एकीकृत न्यायपालिका : सर्वोच्च शिखर पर सर्वोच्च न्यायालय का होना और सभी न्यायालय उसके अधीन रहकर कार्य करते है।

1.2.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारतीय शासन प्रणाली की प्रकृति वर्णन कीजिए। यह कहाँ तक एक शुद्ध संघात्मक व्यवस्था है ?
2. भारतीय संघवाद के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
3. क्या आप इस कथन से सहमत है कि ''भारत में अत्यधिक केन्द्रीकरण है ?'' अपना उत्तर तर्क सहित दीजिए।
4. भारतीय संघवाद का सिद्धांत और व्यवहार में वर्णन करे।
5. भारत के संविधान की प्रकृति संघीय है, परन्तु आपातकाल में इसका स्वरूप एकात्मक हो जाता है। व्याख्या कीजिए ?
6. भारतीय संघवाद की उभरती प्रवृतियों का वर्णन कीजिए।
7. ''भारतीय संविधान न तो पूर्ण रूप से संघात्मक है और न ही पूर्ण रूप से एकात्मक है, बल्कि दोनों का मिश्रण है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. भारत को अर्द्ध–संघात्मक राज्य क्यों कहा जाता है ?
9. संघीय व्यवस्था का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
10. संघीय व्यवस्था की कोई चार विशेषताएं बताइए।
11. एकात्मक व्यवस्था की विशेषता बताइए।

1.2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली

- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984

- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

1.3 भारत में राज्य स्वायत्तता की मांग तथा पृथकतावादी आंदोलन
(Demand for State Autonomy in India and Separatist Movement)

1.3.1 परिचय

भारत में केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण आरम्भ से ही वाद–विवाद का विषय रहा है। संविधान द्वारा केन्द्र सरकार को विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई है और राज्यों को निस्संदेह कम शक्तिशाली बनाया गया है। संविधान लागू होने के बाद से 1967 के चौथे आम चुनाव तक भारत में केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे और उनके बीच कोई विशेष संवैधानिक गतिरोध पैदा नहीं हुआ। जिसका मुख्य कारण केन्द्र और अधिकांश राज्यों में एक ही राजनीतिक दल (कांग्रेस दल) का सत्तारूढ़ होना था। सन् 1967 के आम चुनावों में एक दलीय आधिपत्य का अन्त कर दिया और भारतीय संघ के आठ घटक राज्यों में गैर–कांग्रेसी मिली–जुली सरकारों का निर्माण हुआ जिसके बाद केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण और सामंजस्य की समस्या उत्पन्न हुई। राज्य सरकारों की ओर से स्वायत्तता की मांग की गई और यह मांग तमिलनाडु में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई जहाँ डी०एम०के० (द्रविड़ मुनेत्र कड़गम) जैसे प्रादेशिक दल ने भारतीय संघ से पृथक होने की धमकी दी और यह नारा दिया कि भारत भारतवालों के लिए और तमिलनाडु तमिल लोगों के लिए।

1977 के लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं के चुनाव का विलक्षण परिणाम रहा। केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी से भिन्नता रखने वाली पार्टियों का राज्य में उदय। फलस्वरूप केन्द्र–राज्य सम्बन्ध पर नए सिरे से बहस महत्वपूर्ण हो गई। राज्यों में शासन करने वाली पार्टियों केन्द्र से और अधिक स्वतंत्र होने की मांग करने लगी। राज्यों की केन्द्र पर अत्याधिक वित्तीय निर्भरता की स्थिति ने एक बड़ी सीमा तक सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ाया, अतः केन्द्र पर राज्यों की वित्तीय निर्भरता दूर करने के लिए पश्चिमी बंगाल की धर्मपन्थी सरकार ने मांग की कि केन्द्र के राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों में कमी करके राज्यों को अधिक से अधिक स्वायत्तता प्रदान की जाए।

1.3.2 उद्देश्य

- भारत में केन्द्र व राज्यों को सम्बन्धों के स्वरूप को जानना
- स्वायत्तता का वास्तविक अर्थ क्या है
- राज्य स्वायत्तता की मांग के कारण जानना
- इस मांग के समाधान के लिए उठाए गए कदम
- राज्य स्वायत्तता की औचित्यता को जानना

1.3.3 राज्यों की स्वायत्तता का अर्थ (Meaning of State Autonomy)

भारतीय संघ में राज्यों की स्वायत्तता से अभिप्राय है कि राज्यों के आन्तरिक मामलों में केन्द्रीय सरकार की दखलन्दाजी कम हो तथा संविधान द्वारा प्रदत विषयों पर उन्हें निरपेक्ष सत्ता प्रयोग करने का अधिकार हो। राज्यों को अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण स्वायत बनाया जाए ताकि वे जनकल्याण के कार्यो को अपनी योजनाओं और विचारों के अनुसार स्वतन्त्र और निर्बाध रूप से कर सकें। यह स्वायत्तता वित्तीय क्षेत्र में लगभग पूरी हो। केन्द्र की राजनीतिक और प्रशासनिक शक्तियां भी न्यूनतम रहें। उसका कार्य विदेश सम्बन्ध, रक्षा, मुद्रा और जनसंचार के विषयों तक सीमित और संकुचित कर दिया जाए। उसकी कराधान की शक्ति मात्र इतनी हो जिससे वह इन कार्यो के लिए पर्याप्त साधन जुटा सकने में समर्थ हो। केन्द्र को मजबूत रखते हुए भी राज्यों को इतनी वित्तीय शक्ति प्रदान की जाए जिससे वे साधनों के अभाव में अपने को असहाय और अप्रभावशाली महसूस न करें।

राज्यों की स्वयत्तता का अर्थ न तो राज्यों की स्वतंत्रता से है और न सम्प्रभुता से। यह एक ऐसा वैधानिक दर्जा है जिसमें राज्यों को व्यक्तिमय निर्दिष्ट क्षेत्रों में पूर्ण स्वतंत्रता तथा कम से कम केन्द्रीय हस्तक्षेप का आश्वासन प्राप्त होता है। राज्यों को अपने एक निश्चित क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का अधिकार ही स्वायत्तता है।

राज्य स्वायत्तता की मांग (Demand for State Autonomy)

केन्द्र–राज्य सम्बन्धों को सुचारू रूप से चलाने के लिए आवश्यक सहयोग व सहमति का आधार संविधान में मौजूद है। लेकिन पिछले दशकों के दौरान यह आधार

कमजोर हुआ है। इसकी जगह 'टकराव' की राजनीति ने ले ली है। राज्य अपने आपको स्वायत्तता से वंचित पाते हैं जबकि संविधान में राज्यों को काफी स्वायत्तता दी गयी है। दुर्भाग्य की बात यह है कि केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के बावजूद भी केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति कम नहीं हुई है। इसलिए राज्यों ने अधिकारों के उचित बंटवारे की मांग जोरदार ढंग से उठाई है। 1967 में आम चुनावों में आठ राज्यों में कांग्रेस की पराजय के बाद राज्यपालों की विवादास्पद भूमिका के परिवेश में केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की आलोचना की गयी। चौतरफा आलोचना का असर यह हुआ कि 1967 में केन्द्र सरकार ने जब प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया तो इसे केन्द्र व राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों की पड़ताल का काम भी सौंपा। आयोग ने यह सुझाव दिया कि राज्यों को अधिक अधिकार दिये जाए। आयोग का मानना था कि केन्द्रीय नियोजन प्रक्रिया ने राज्यों द्वारा अपनी नीतियों व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अत्याधिक हस्तक्षेप किया है। राज्यपाल के पद के बारे में भी आयोग ने सुझाव दिये और संविधान की धारा 263 के अन्तर्गत एक अंतर्राष्ट्रीय परिषद की सिफारिशें की लेकिन आयोग की सिफारिश फाइलों में धूल चाटती रही और केन्द्रीकरण की प्रक्रिया और मजबूत होती चली गयी।

1969 में तमिलनाडू सरकार ने केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की पड़ताल करने के लिए राजमन्नार समिति का गठन किया। समिति ने 1971 में अपनी रिर्पोट पेश की। समिति में सिफारिश की कि संविधान की आठवीं अनुसूची में संशोधन कर, अवशिष्ट अधिकार राज्यों को सौंप दिए जाए। धारा 249 को समाप्त कर दिया जाए और वित्त आयोग व योजना आयोग की संरचना में बदलाव किया जाए।

दिसम्बर, 1977 में पश्चिम बंगाल सरकार ने केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर एक ज्ञापन प्रकाशित करवाया। इस ज्ञापन में कहा गया कि जाति, धर्म व संस्कृति विविधताओं वाले देश भारत में स्वैच्छिक प्रयासों से ही राष्ट्रीय एकता कायम रखी जा सकती है। विखंडनकारी प्रवृतियों पर रोक लगाने के लिए राज्यों को अधिकार देकर विकेंद्रीकरण करना आवश्यक है। संविधान की प्रस्तावना में 'यूनियन' हटाकर 'फेडरेशन' शब्द का उल्लेख करने की मांग की गयी। इस ज्ञापन में संविधान की धारा 356, 357 व 360

को समाप्त करने का सुझाव भी दिया गया। यह मांग भी की गयी कि नये राज्यों के गठन और राज्यों का क्षेत्र, सीमा या नाम में परिवर्तन के लिए राज्यों की सहमति लेने को अनिवार्य बनाया गया।

इसके बाद अकाली दल ने 1978 में आनंदपुर साहिब प्रस्ताव का संशोधित संस्करण जारी किया। इस प्रस्ताव में राज्यों के लिए और स्वायत्तता की मांग की गयी और केन्द्र के अधिकारों को न्यूनतम करने का सुझाव दिया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार केन्द्र सरकार के अधिकार – रक्षा, विदेश मामले, संचार, रेलवे व मुद्रा तक सीमित रहने चाहिए और अवशिष्ट अधिकारों राज्यों को हस्तांतरित कर दिए जाने चाहिए।

1980 के दशक में अनेक विपक्षी पार्टियों का स्वरूप लगभग क्षेत्रीय हो गया है। इसलिए राज्यों की स्वायत्तता की मांग और जोर पकड़ने लगी है। विजयवाड़ा, दिल्ली व श्रीनगर में आयोजित सम्मेलनों में फारूक अब्दुल्ला एम० करूणानिधि, सुरजीत सिंह बरनाला, रामकृष्ण हेगडे, एन०टी० रामाराव और प्रफुल्ल कुमार महंत सरीखे विपक्षी नेताओं ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। इसके अतिरिक्त राज्यों की स्वायत्तता की मांग के समर्थन में कई गोष्ठियों का भी आयोजन किया गया। विपक्षी पार्टीयों के विजयवाड़ा सम्मेलन में राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप करने की केन्द्र सरकार की नीतियों की जमकर आलोचना की गयी। अक्टूबर 1983 में श्रीनगर में आयोजित तीन दिवसीय सम्मेलन में जनता से आह्वान किया गया कि अधिकारों के केन्द्रीकरण व संविधान में विकृतियों के कारण राष्ट्रीय एकता पर मंडरा रहे खतरों से देश को बचाने के लिए आगे आए। इस सम्मेलन में आप सहमति से बयान जारी किया गया कि केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की समीक्षा की जाए। केन्द्रीकरण की प्रवृति से संविधान के संघीय ढांचे की रक्षा की जाए और आर्थिक व वित्तीय प्रशासन के केंद्रीकृत ढांचे में बदलाव लाया जाए। केन्द्र व राज्यों के बीच तनाव व विवादों को समाप्त करने के लिए यह जरूरी है कि राज्यों के मामलों में केन्द्र की मनमानी को रोका जाए। इस सम्मेलन में संविधान की धारा 356 में संशोधन करने की मांग की गई। संवैधानिक संकट उत्पन्न होने पर छह महीने के भीतर चुनाव करवाने की मांग भी इस सम्मेलन में उठी।

अधिकारों के विकेंद्रीकरण व राज्यों की स्वायत्तता के सर्मथको का मानना है कि राष्ट्रीय एकता को अक्षुण रखने और राष्ट्रीय एकता की ताकतों को मजबूत बनाने के लिए देश की विविधताओं को स्वीकार करते हुए इन्हें स्थानीय स्तर पर सुरक्षित करने की कोशिशों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इन विविधताओं से निपटने के लिए केन्द्रीय स्तर पर की गयी कोशिशों से केन्द्र – राज्य सम्बन्धों में तनाव और बढ़ेगा। दूसरी तरफ, केन्द्र के अधिकारों को मजबूती प्रदान करने के पक्षधरों का तर्क है कि राष्ट्रीय शक्तियों को बढ़ावा देकर ही राष्ट्रीय एकता की रक्षा की जा सकती है। मजबूत केन्द्र के समर्थकों का मानना है कि केन्द्र को कमजोर करने का कोई भी प्रयास अतंतः भारत को सोवियत संघ की राह पर धकेल देगा। इस दृष्टिकोण के अनुसार राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में सिर्फ केन्द्र ही सक्षम है और क्षेत्रीय ताकतों को बढ़ावा देने से विखण्डनकारी शक्तियों को बल मिलेगा। लेकिन भारत व विश्व के अन्य देशों का अनुभव बताता है कि अधिकारों के केन्द्रियकरण के कारण विखण्डनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिलता है जबकि विकेंद्रिकरण के फलस्वरूप जनता की उम्मीदें को पूरा करने का अवसर पैदा होता है।

सरकारिया आयोग (Srkari Commission)

जब केन्द्र–राज्यों के सम्बन्धों में तनाव बढ़ने लगे तो स्थिति पर काबू पाने के उपायों पर चर्चा शुरू हुई। इसी संदर्भ में केन्द्र सरकार ने 24 मार्च 1983 को एक आयोग के गठन की घोषणा की। इस आयोग को केन्द्र व राज्यों के बीच मौजूदा व्यवस्था की समीक्षा करने और इसमें वांछित बदलाव के लिए सिफारिशें देने का काम सौंपा गया। अवकाश प्राप्त न्यायमूर्ति आर०एस० सरकारिया इस आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किये गए। केन्द्र–राज्य सम्बन्धों पर सुझाव देते समय आयोग को सामाजिक व आर्थिक विकास, संविधान की संरचना और राष्ट्रीय एकता व अखंडता का ध्यान रखने को कहा गया आयोग ने 27 अक्तूबर 1987 को अपनी रिर्पोट पेश की।

सरकारिया आयोग का यह मानना था कि मौजूदा संवैधानिक ढांचा दुरूस्त है। आवश्यकता इस बात की है कि सामूहिक निर्णय प्रक्रिया को बढ़ावा देने के उपाय किए

जाए। आयोग ने इस सम्बन्ध में 265 सिफारिशें दी हैं। इसकी प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार है –

1. संविधान की धारा 258, जिसमें केन्द्र को यही अधिकार है कि वह राज्यों को अधिकार सौंपने का पहले के मुकाबले अधिक उदारता के साथ उपयोग किया जाए।
2. अखिल भारतीय सेवाओं को विघटित करने की कोई भी कोशिश या राज्यों को इस व्यवस्था से बाहर रखने का अधिकार देने से देश पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अखिल भारतीय सेवाओं को और मजबूत किया जाना चाहिए।
3. जब केन्द्र सरकार समवर्ती सूची के तहत कोई कानून बनाने का प्रस्ताव लाये, तो इससे पूर्व वह सभी राज्यों से अलग–अलग तथा सामूहिक रूप से सलाह मशविरा करे।
4. योजना आयोग व राष्ट्रीय विकास परिषद् में सुधार किया जाए और यह सुनिश्चित किया जाए कि नियोजन प्रक्रिया में राज्यों से सलाह–मशविरा हो ताकि राज्यों को इस प्रक्रिया में अपनी बराबर की भागीदारी का अहसास हो।
5. राज्य सरकार के अनुरोध के बैगर अगर केन्द्र सरकार किसी राज्य में अपने सुरक्षा बलों को तैनात करती है या राज्य के किसी क्षेत्र को 'गड़बड़ी वाला' घोषित करती है तो इससे पूर्व राज्यों से सलाह–मशविरा किया जाए। हालांकि इस मामले में कार्यवाही करने से पहले राज्यों से सलाह करना केन्द्र के लिए अनिवार्य नहीं लेकिन इस संदर्भ में राज्यों का सहयोग हासिल करने की कोशिश की जानी चाहिए।
6. अपना पद छोड़ने के बाद राज्यपाल को केन्द्र या राज्य सरकार से लाभ का कोई पद नहीं दिया जाना चाहिए।
7. राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए अरक्षित राज्य सरकारों के विधेयकों पर चार माह के भीतर निर्णय कर दिया जाना चाहिए।
8. धारा 356 का इस्तेमाल केवल विशेष परिस्थितियों में, जब सभी विकल्प विफल हो जाए, किया जाना चाहिए।

9. हाईकोर्ट के जजों को तबदली उनकी मर्जी से ही करने की स्वस्थ परम्परा का निर्वाह किया जाए। किसी जज के तबादले पर अपनी राय बनाने से पहले भारत के मुख्य न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठ जजों से परामर्श कर लेना चाहिए।

10. योजना आयोग केन्द्रीय सहायता प्राप्त स्कीमों की समय–समय पर समीक्षा करें और यह समीक्षा राष्ट्रीय विकास परिषद् के विचारार्थ पेश की जाए।

11. कर व्यवस्था में सुधारों पर सुझााव देने के लिए केन्द्र एक विशेषज्ञ समिति का गठन करे। इस समिति में राज्यों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाए।

12. राष्ट्रीय विकास परिषद् का पुनर्गठन कर इसका नाम राष्ट्रीय आर्थिक विकास परिषद कर दिया जाए।

13. राज्यों से सलाह मशविरा कर धारा 269 के अन्तर्गत लगाए जाने वाले करों व भुलकों की व्यवस्था की समीक्षा करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया जाए।

14. किसी राज्य के लिए राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में उस राज्य के मुख्यमंत्री से विचार–विमर्श सुनिश्चित करने के लिए धारा 155 में संशोधन के द्वारा यह व्यवस्था की जाए।

15. करों के सम्बन्ध के अवशिष्ट अधिकार संसद के पास रहने दिया जाए और करों के इलावा शेष अवशिष्ट अधिकारों को समवर्ती सूची में शामिल कर दिया जाए।

16. धारा 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन को जारी रखने के मामले की समीक्षा करने का अधिकार संसद को देने के लिए इस धारा में ही इस आशय के उपायों को शामिल किया जाए।

17. संविधान में उचित संशोधन कर, कारपोरेट टैक्स में राज्यों को हिस्सा देने की व्यवस्था की जा सकती है।

18. अर्न्तराज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम में संशोधन कर केन्द्र सरकार के लिए एक अनिवार्य बनाया जाए कि इस सम्बन्ध में राज्यों के आवेदन आने के एक साल के भीतर ट्रिब्यूनल का गठन करे।

केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में विचार–विमर्श, सहयोग व भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए सरकारिया आयोग ने संविधान की धारा 263 के अन्तर्गत एक स्थायी अर्न्तराज्य परिषद् के गठन का सुझाव दिया।

राज्य स्वायत्तता के समर्थन में तर्क (Arguments in favour of State Autonomy)

राज्यों के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए जाते है –

1. स्वायत्तता स्वतंत्रता नहीं है और स्वायत्तता की मांग संघीय ढांचे में की जा रही है। अतः इससे विघटन का खतरा नहीं है।
2. राज्यों के कार्य दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है। आर्थिक नियोजन और ग्रामीण विकास सम्बन्धी बढ़ते हुए कार्यो को देखते हुए उन्हें वित्तीय साधनों की दृष्टि से केन्द्र को मोहताज बनाए रखना ठीक नहीं। इनके पृथक वित्तीय साधन होने से विकास सम्बन्धी कार्य व दायित्वों के निर्वाह में अधिक सुविधा होगी।
3. केन्द्र और राज्यों में पृथक–पृथक राजनीतिक दलों की सरकारें होना स्वाभाविक हैं, किन्तु यह देखा गया है कि राज्यों को अनुदान देते समय केन्द्रीय सरकार सौतेला व्यवहार करती है। वह उन राज्यों के साथ सौम्य व्यवहार करती है जहां उससे मेलजोल रखने वाली सरकारें है और उन राज्यों के साथ कठोर रूख अपनाती है जहाँ उसकी विचारधारा से भिन्नता रखने वाली राज्य सरकार है। राज्य स्वायत्तता से यह दोहरा मापदण्ड समाप्त हो जाऐगा।
4. राज्य स्वायत्तता से भारत में सच्ची संघात्मक व्यवस्था की स्थापना हो सकेगी।
5. राज्य स्वायत्तता से राज्यों में उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

राज्य स्वायत्तता के विपक्ष में तर्क (Arguments Against State Autonomy)

केन्द्रीय सरकार की दृष्टि से राज्य स्वायत्तता की अवधारणा से संघ व्यवस्था दुर्बल होगी और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से खतरनाक परिणाम होंगे इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं।

1. कुल मिलाकर देश की सुदृढ़ता ही राज्यों की स्वायत्तता की सर्वोतम गारण्टी है क्योंकि किसी प्रकार वह मजबूती समाप्त हो जाए तो न भारतीय संघ की प्रभुसता रहेगी और न ही राज्यों की स्वायत्तता रह सकेगी।

2. राजमनार समिति के सुझाव तो संविधान की आत्मा को ही बदलने वाले खतरनाक विचार है। समिति का प्रतिवेदन क्षेत्रीयता को बढ़ाने वाला और राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुँचाने वाला है।

3. जो भारतीय संघ के घटक राज्य स्वायत्तता की मांग कर रहे है और स्वायत्तता के बाद उनकी अगली मांग स्वायत्तता और प्रभुसत्ता हो सकती है। प्रादेशिक दलों द्वारा शासित राज्य सरकारों की स्वायत्तता की मांग के पीछे कहीं विदेशी ताकतों का हाथ तो नहीं जो भारत को खण्डित करना चाहती है।

4. राज्यों को और अधिक स्वायत्तता देने से राज्यों में छोटी–छोटी तानाशाहियाँ स्थापित हो जाएगी। राज्य के भीतर निर्णय और कार्य की शक्ति मुख्यमंत्रियों के हाथों में घनीभूत हो जाऐगी, साम्राज्य निर्माण की प्रवृति बढ़ेगी और देश का सन्तुलन लड़खड़ा जाएगा।

5. क्षेत्रीय दलों और उनके नेताओं द्वारा राज्यों की स्वायत्तता की मांग एक सुनियोजित और गम्भीर राजनीतिक चाल है, जिसके द्वारा कुछ तत्व अपने व्यर्थ स्वार्थो की पूर्ति करना चाहते है।

1.3.4 निष्कर्ष

कमजोर केन्द्र बिखराव को प्रोत्साहित करता है तथा दूसरी और कमजोर राज्यों के कारण केन्द्र में तानाशाही प्रवृतियों के उभरने का खतरा भी है। आपातकाल का अनुभव इसका ताजा उदाहरण है जबकि राज्यों की आज्ञाकारी शिशुओं से बदतर बना दिया गया और केन्द्र द्वारा संवैधानिक शक्तियों के अपहरण पर राज्य सरकारें चूं तक नहीं कर सकी। अतः केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्धों की एक सन्तुलनकारी स्थिति को अपनाए जाने की आवश्यकता है।

राज्यों की वित्तीय दुर्दशा ऐसी है कि राज्य सरकारें अपने बलबूते पर कोई योजना चालू नहीं कर सकती और अकाल, सूखा व बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोपों का सामना करने के लिए केन्द्र से अनुभव विनय करती है। हर छोटे काम के लिए मुख्यमंत्रियों को बार–बार दिल्ली दरबार में हाजिरी देनी पड़ती हैं राज्य विधानसभा द्वारा पारित प्रस्ताव राष्ट्रपति की स्वीकृति की प्रतिक्षा में पड़े रहते है।

राष्ट्रीय एकता व सुरक्षा की दृष्टि से केन्द्र के सशक्त होने की आवश्यकता निर्विवाद है तो जनहितकारी कार्यो के विस्तार तथा सेवाओं को क्षमतावान बनाने के लिए राज्यों की अधिकारिता भी तर्कसंगत ठहरती है। अतः राज्यों की स्वायत्तता एवं उनके शासनाधिकार के विस्तार का प्रश्न चहुपरक कसौटी पर जांचा व परखा जाए। इस प्रश्न पर विचार करते समय देश की स्थिति अब तक का अनुभव एवं देशवासियों की आकांक्षा व अवाश्यकताओं को आधार बनाया जाना चाहिए। भारत की संघात्मक व्यवस्था और केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का सर्वाधिक प्रमुख तथ्य यह है कि राज्यों को सशक्त बनाने का अर्थ केन्द्र को अशक्त बनाना नहीं है और केन्द्र राज्य सम्बन्धों की कोई समस्या नहीं है जो संविधान के वर्तमान ढांचे में हल न की जा सके।

1.3.5 मुख्य शब्दावली

- राज्य स्वायत्तता : राज्य सूची में दिए गए विषयों पर राज्य द्वारा निर्बाध रूप से कानून बनाने का अधिकार यानी केन्द्र द्वारा किसी भी प्रकार का अनावश्यक हस्तक्षेप राज्य के मामलों में ना हो।
- खालिस्तान आन्दोलन : खालिस्तान के रूप में पंजाब से अलग एक पृथक राज्य की मांग अकालियों के द्वारा।
- नागा आन्दोलन : असम राज्य में रहने वाले नागा जाति ने भारतीय संघ से अलग होने के लिए चलाया गया आन्दोलन।
- गोरखालैंड आन्दोलन : पश्चिमी बंगाल के पहाड़ी क्षेत्र के लोगों ने गोरखालैंड के नाम से एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के मांग हेतू आन्दोलन किया गया।

1.3.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. राज्य की स्वायत्तता की परिभाषा दीजिए। भारत में 'राज्य की स्वायत्तता की मांग' के जन्म और विकास का वर्णन करे।
2. राज्य स्वायत्तता का क्या अर्थ है ? भारतीय संघ में राज्य स्वायत्तता की मांग की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

3. राज्य स्वायत्तता की मांग कहां तक उचित है ? इसके पक्ष व विपक्ष में तर्क दीजिए।
4. राज्यों की स्वायत्तता का क्या अर्थ है ?
5. राज्य स्वायत्तता की मांग के पक्ष में कोई चार तर्क कीजिए।
6. राज्य स्वायत्तता की मांग क्यों की गई ?

1.3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967

- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994
- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012

1.4 केन्द्र–राज्य सम्बन्ध (Centre-State Relations)

1.4.1 परिचय

संघीय संविधान, राष्ट्रीय प्रभुता तथा राज्य प्रभुता के दावों के बीच, जो कि उपरी दृष्टि से विरोधी जान पड़ती है, सामंजस्य पैदा करने का प्रयत्न करता है। संविधान के अन्तरंग में ही कुछ ऐसे उपबन्ध होते है जो सामंजस्य के तौर–तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करने वाली संघ प्रणाली को 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी जाती हैं इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्र में कमजोर नहीं होती, साथ ही दोनों ही सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है। संघवाद का बुनियादी तत्व है शक्तियों का विभाजन। सहयोगी संघवाद में शक्तियों के विभाजन के उपरान्त भी केन्द्र एवं राज्यों के बीच अन्तःक्षेत्रीय सहयोग पर बल दिया जाता है। यह सहयोग केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के बीच ही नहीं अपितु विभिन्न राज्य सरकारों एवं असंख्य राजनीतिक संरचनाओं के मध्य भी दिखलाई देता है।

वस्तुतः कोई भी संघीय शासन प्रणाली वाला देश आज यह दावा नहीं कर सकता है कि वह केन्द्र–राज्य मतभेदों की समस्या से पूर्णतया उन्मुक्त है। यथार्थ में संघ व्यवस्था जिसका आधार परम्परा सामंजस्यपूर्ण हिस्सेदारी की भावना है, को तनावों का संस्थाकरण (Institutionalised Tensires) करने वाली व्यवस्था भी कहा जाता है।

1.4.2 उद्देश्य

- केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारे के बारे में जानना
- क्या राज्य अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से कर सकते है
- केन्द्र राज्यों के बीच यदि तनाव पैदा हो तो कैसे निवारण किया जाता है
- केन्द्र राज्य सम्बन्धों में क्या–क्या सीमाएं है

- सम्बन्धों में और अधिक समन्वय कैसे किया जा सकता है

1.4.3 केन्द्र राज्य सम्बन्ध

भारत के संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की एक निश्चित सुस्पष्ट योजना अपनाई है। संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध
2. केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध
3. केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध

केन्द्र–राज्य विधायी सम्बन्ध (Centre-State Legistative Relations)

संघ व राज्यों के विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है। जिन्हें संघ सूची (Union List), राज्य सूची व समवर्ती सूची (Concurnent List) का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

संघ सूची (Union List)

इस सूची में राष्ट्रीय महत्व के ऐसे विषयों को रखा गया है। जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है। इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय है जिनमें कुछ प्रमुख हैं – रक्षा, वैदिशक मामले, मुद्दे व सन्धि, रेल डाक, तार तथा टेलिफोन।

राज्य सूची (State List)

इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं जो क्षेत्रीय महत्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि का निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की विधानमण्डलों को ही प्राप्त है। मूल संविधान के अनुसार इस सूची में 66 विषय थे, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन से इस सूची के चार विषय शिक्षा, वन जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा तथा नापतोल, राज्य सूची से समवर्ती सूची में कर दिए गए है। राज्य सूची के कुछ प्रमुख विषय है। पुलिस, न्याय, जेल, सिंचाई और सड़कें आदि।

समवर्ती सूची (Concurrent List)

इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दृष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य दोनों को ही विधियां बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि इस सूची के विषय पर संघीय तथा राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो, तो सामान्यतः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विषय हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं – विवाह और विवाह विच्छेद, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, आर्थिक और सामाजिक योजना, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा आदि।

अवशेष विषय (Residuary Subjects)

भारतीय संघ में कानून के संघ की तरह अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गई है।

राज्य सूची के विषयों पर संसद की व्यवस्थापन शक्ति

(Parilament Can Legistate on the Subjects of the State List)

सामान्यतः संविधान द्वारा दिए गए इस शक्ति–विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की विधानमण्डल द्वारा संघीय सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा, लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रावधान निम्नलिखित है –

1. **राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्व का होने पर :** संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा अपना दो–तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में निहित कोई विषय राष्ट्रीय महत्व का हो गया है, तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती है। राज्यसभा द्वारा प्रस्ताव पुनः स्वीकृत करने

पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वृद्धि और हो जाएगी। इसकी अवधि समाप्त हो जाने के उपरान्त यह 6 माह तक प्रयोग में आ सकता है।

2. **राज्यों की विधानमण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर :** अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते है कि राज्य सूची के किन्हीं विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाए, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है। राज्यों के विधानमण्डल न तो उन्हें संशोधित कर सकते है और न ही इन्हें पूर्णरूप से समाप्त कर सकते हैं।

3. **संकटकालीन घोषणा होने पर (अनुच्छेद 250) :** संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिनी शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है। इस घोषणा की समाप्ति के 6 माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत् चलते रहेगे।

4. **विदेशी राज्यों से हुई सन्धियों के पालन हेतु (अनुच्छेद 253) :** यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की सन्धि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है, तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

5. **राज्य में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर (अनुच्छेद 356) :** किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाये या संवैधानिक तत्व विफल हो जाए तो राष्ट्रपति राज्य विधानमण्डल के समस्त अधिकार भारतीय संसद को प्रदान कर सकता है।

6. कुछ विधेयकों को प्रस्तावित करने और कुछ की अन्तिम स्वीकृति के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक उपयुक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी राज्य विधानमण्डलों की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित

है। अनुच्छेद 304 (ख) के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं, जिनके राज्य विधानमण्डल में प्रस्तावित किए जाने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, वे विधेयक, जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि उस राज्य के अन्दर या उसके बाहर वाणिज्य या मेल–जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हो।

अनुच्छेद 31 (ग) के अनुसार, राज्य सूची के ही कुछ विषयों पर राज्यों की विधानमण्डलों द्वारा पारित विधेयक उस दशा में अमान्य होंगे, यदि उन्हें राष्ट्रपति ने विचारार्थ रोक रखा हो और उन पर राष्ट्रपति को स्वीकृति ने प्राप्त कर ली गई हो। उदाहरण के लिए किसी राज्य द्वारा सम्पति को अधिग्रहण के लिए बनाए गए कानूनों का समवर्ती सूची के विषयों के बारे में ऐसे कानूनों, जो संसद के उससे पहले बनाए गए कानूनों के प्रतिकूल हो या उन पर जिनके द्वारा ऐसी वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर लगाया जाने वाले कर हो, जिन्हें संसद ने समाज के जीवन के लिए आवश्यक घोषित कर दिया है, राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक के बारे में अपनी सहमति देने से इन्कार कर सकता है और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति बिना कोई कारण बताए विधेयकों के अस्वीकार कर सकता है।

केन्द्र के द्वारा उन संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर व्यवहार में भी अपने आपको शक्तिशाली बनाने का कार्य किया है। उदाहरण के लिए, 1954 में तृतीय संशोधन के आधार पर समवर्ती सूची के विषयों में वृद्धि की गई, जिससे कि खाद्यान्न के अभाव में उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार आवश्यक कदम उठा सकें।

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में साधारणतया संघीय संसद तथा राज्यों की विधानमण्डलों के कार्यक्षेत्र संविधान द्वारा विभाजित हैं, लेकिन विशेष परिस्थितियों में संघ सरकार द्वारा राज्य सरकार के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण किया जा सकता है। पायली के अनुसार विधायी सत्ता के वितरण की सूची योजना से निःसन्देह केन्द्रीकरण की एक प्रबल प्रवृति प्रकट होती है।

केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्ध (Centre-State Administrative Relations)

संघात्मक शासन प्रणाली की सबसे कठिन समस्या संघ तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों का समायोजन करना है। यदि संविधान में तत्सम्बन्धी स्पष्ट तथ्य उपलब्ध न हों तो दोनों को अपना दायित्व निभाने में यदि कठिनाई का अनुभव होता है। इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस सम्बन्ध में विस्तृत उपलब्धों की आवश्यकता अनुभव की ताकि प्रशासनिक क्षेत्र में संघ तथा राज्यों के मध्य किसी प्रकार के विवाद उत्पन्न न हो।

प्रशासनिक सम्बन्ध : संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में

(Administrative Relations : Constitutional Aspect)

भारतीय संविधान के ग्यारहवें भाग के दूसरे अध्याय में केन्द्र और राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार, केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को विधि का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार राज्यों की प्रशासनिक शक्तियां उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित है किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियों को संघ की ऐसी प्रशासनिक शक्तियों द्वारा सीमित रखा गया हैं जो या तो संविधान द्वारा या संसदीय विधि द्वारा प्रदत है।

प्रशासनिक सम्बन्धों में केन्द्र को राज्यों के ऊपर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रदान किया गया है, किन्तु इसके बावजूद राज्यों को स्वायत्तता एवं जिम्मेदारी का बड़ा क्षेत्र मिला हुआ है। फिर भी कुछ विद्वानों को महसूस होता है कि इन सम्बन्धों ने राज्यों की स्वायत्तता को कम किया हैं क्योंकि एक ही दल का बोलबाला है और ''राज्यों के मुकाबले एक अत्यन्त शक्तिशाली संस्था के रूप में केन्द्रीय कार्यपालिका का उदय हुआ है तथा केन्द्र को अधिक अधिकार मिल गए हैं।''

राज्यों के उपर संघीय नियन्त्रण की विधियां

संविधान के अन्तर्गत केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से संघीय सरकार को राज्यों के सम्बन्ध में कतिमय प्रशासनिक शक्तियां प्राप्त है जो निम्नवत् हैं –

1. **राज्यों का दायित्व :** संविधान के अनुसार राज्यों को अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए जिससे संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पालन होता रहे। हर राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह संसद के कानूनों को अमल में लाने के लिए हर सम्भव उपाय काम में लाए। राज्यों का यह भी दायित्व हैं कि केन्द्रीय प्रशासन में कोई बाधा उत्पन्न न होने दे।
2. **केन्द्र सरकार राज्यों को निर्देश दे सकती है :** केन्द्र को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्यों को यह निर्देश दे सके कि उन्हें अपनी कार्यकारी शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। राष्ट्रीय व सैनिक महत्व के मार्गो व पुलों आदि का निर्माण साधारणतया केन्द्रीय सरकार ही करती है, परन्तु केन्द्र को यह अधिकतर प्राप्त है कि इस प्रकार के मार्गो के निर्माण व उनके उचित रखरखाव के लिए वह राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सके। इसी प्रकार रेलमार्गो तथा रेलगाड़ियों की सुरक्षा के लिए भी निर्देश जारी किए जा सकते हैं।
3. **केन्द्र राज्यों की सरकारों का उपयोग अपने एजेन्ट के रूप में कर सकता है :** राष्ट्रपति राज्यों की सरकारों अथवा उसके पदाधिकारियों को अपने एजेन्ट के रूप में कोई भी कार्य करने की जिम्मेदारी सौंप सकता है। इसका अभिप्रायः यह है कि संघ सूची में दिए गए किसी भी विषय से सम्बन्धित कोई भी कार्य राज्यों के पदाधिकारियों को सौंपा जा सकता है।
4. **सरकारी कृत्यों अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाही को पूरी मान्यता दी जाएगी :** केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार दोनों का यह कर्त्तव्य है कि वे सभी सरकारी कृत्यों का आदर करे और देश के सभी न्यायालयों द्वारा किए गए अन्तिम निर्णयों को लागू करें।

5. **दो या अधिक राज्यों में बहने वाले जलाशयों व नदियों के जल का बटवारा :** संसद को यह अधिकार है कि अन्तर्राष्ट्रीय नदियों के बंटवारे से उत्पन्न विचार को निपटाने के लिए वह उचित कानून बनाए। संसद किसी भी नदी या नदी घाटी परियोजना के पानी के इस्तेमाल, वितरण या नियन्त्रण सम्बन्धी विवाद के सिलसिले में मध्यस्थता की व्यवस्था कर सकती हैं संसद, सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवादों पर विचार करने से रोक सकती है। यह एक महत्वपूर्ण अधिकार है और इसका इस्तेमाल कृषि व औद्योगिक विकास के लिए पानी और बिजली जैसी सुविधा की व्यवस्था के लिए किया जा सकता है। साथ ही इसका उपयोग दामोदर घाटी निगम जैसी बहु–उद्देशीय परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है।

6. **अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना :** संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह एक अन्तर्राज्यी परिषद् की स्थापना करे, जिसके निम्नलिखित तीन विशेष कार्य होंगे –

- राज्यों के बीच उठ खड़े होने वाले विवादों की जांच करना तथा उनके सम्बन्ध में सलाह देना।
- उन विषयों पर छानबीन कर विचार करना जिनमें राज्यों की एक समान दिलचस्पी हो।
- इन विषयों और विशेषकर इनसे सम्बन्धित नीति एवं कार्य के बेहतर समन्वय के सम्बन्ध में सिफारिशें करना राष्ट्रपति इस परिषद के संगठन और प्रक्रिया को निर्धारित एवं इसके कर्त्तव्यों को परिभाषित कर सकता है।

7. **अखिल भारतीय सेवाएं :** संघ द्वारा राज्यों को नियन्त्रित करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है आखिल भारतीय सेवाएं। यद्यपि राज्यों और केन्द्र की पृथक सेवाएं और लोकसेवा आयोग है, फिर भी संविधान अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के लिए संघ को अधिकार देता है। संघ को इन सेवाओं के सदस्यों को राज्यों के महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर रखने का अधिकार होता है।

8. **राज्यपाल** : राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते है और इस प्रकार से वे राज्यों में केन्द्र के एजेन्ट के नाते कार्य करते हैं। उनके माध्यम से केन्द्रीय सरकार राज्यों के शासन पर अकुंश रख सकती है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी विषय है जिनका सम्बन्ध यद्यपि दोनों सरकारों से है तथापि जिनका निर्धारण केन्द्रीय सरकार ही करती है। उदाहरण के लिए निर्वाचन लेखा परीक्षण आदि।

संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार यदि राज्य की सरकार केन्द्र के निर्देशों का पालन न करे तो राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि राज्य का संवैधानिक ढांचा विफल हो गया है। इस घोषणा का परिणाम यह होगा कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाएगा।

संक्षेप में, संविधान केन्द्रीय कार्यपालिका के प्राबलय का प्रावधान करता है। संघीय प्रशासनिक सम्बन्धों की क्रिया के कारण राज्यों की स्वायत्तता में इतनी कमी आ गई है कि संघीय राज्यतंत्र के सहकारी स्वरूप पर आघात पहुँचा है।

केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध (Centre-State Finaincial Relations)

संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों की सरकारों के बीच केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का ही विभाजन नहीं होता अपितु वित्तीय स्त्रोतों का बंटवारा होता है। वित्तीय स्त्रोतों के विभाजन को लेकर राज्यों के बीच मतभेद और तनाव उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी कि संघात्मक शासन प्रणाली और यह विश्व की अधिकांश संघ व्यवस्थाओं को संकटग्रस्त करती रही है।

केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्ध : संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धान्त है – कार्यक्षमता, पर्याप्तता तथा उपयुक्ता। इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी, अतः भारतीय संविधान में समझौते की कोशिश की गई।

1. **कर निर्धारण, शांति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन** : भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं है। प्रथम, संघ तथा राज्यों के

मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण विभाजन कर दिया गया है और द्वितीय करों से प्राप्त आय का बटवारा होता है।

संघ के प्रमुख राजस्वस्त्रोत इस प्रकार है : निगम कर, सीमा कर, निर्यात शुल्क, कृषि, भूमि को छोड़कर अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी, ऋण रेले, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार आदि। राज्यों के राजस्व स्त्रोत है : प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर, सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं तथा नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय पर कर, वाहनों पर चुंगी कर आदि।

संघ द्वारा आयोजित तथा संग्रहित विनियोजित किए जाने वाले शुल्कों के उदाहरण है : बिल विनयमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डियों, चैकों आदि पर मुंद्राक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौक–श्रृंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहित किन्तु राज्यों को सौंपें जाने वाले करों के उदाहरण है। कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पति पर सम्पदा शुल्क, रेल, संमुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान–प्रदान बाजार के आदान प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार पत्रों के क्रय–विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय–विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय–विक्रय पर कर।

कतिपय कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहित किए जाते हैं, पर उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आय कर का विभाजन संघीय भू–भाग के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आय कर के अतिरिक्त दवा तथा शौक श्रृंगार सम्बन्धी चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

2. **सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए दिया जाने वाले अनुदान :** संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों को चार तरह से सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। प्रथम, पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है। उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों–बिहार, बंगाल, असम व उड़ीसा को दिया जाता है। दूसरा, बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिए भी केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है। तीसरा, आदिम जातियों व कबीलों की उन्नति व उनके कल्याण की योजनाओं के लिए भी सहायक अनुदान दिया जाता है। चौथा, राज्य को आर्थिक कठिनाइयों से उबारने के लिए केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता कर सकता है।

3. **ऋण लेने सम्बधी उपबन्ध :** संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता हैं, परन्तु वे विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य सरकार पर संघ सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज संघ सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज देते समय संघ सरकार किसी भी प्रकार की शक्ति लगा सकती है।

4. **करो से विभुक्ति :** राज्यों द्वारा संघ की सम्पत्ति पर कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार संघ सरकार भी राज्य सम्पति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

5. **भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण :** भारत के नियन्त्रक महालेख परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है यह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य के ऊपर अपना नियन्त्रण करती है।

6. **वित्तीय संकटकाल :** वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों की आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान आदि संघ के करों की आय में भाग बटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

निष्कर्ष में यह कहना उचित है कि भारतीय संघवाद की सामान्य प्रकृति अर्थात् 'केन्द्रीयता' के अनुकूल ही उपबन्धों की योजना हुई है। केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों की अपेक्षा वित्तीय क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। प्रो० एम०बी० पायली के शब्दों में, ''वर्तमान स्थिति में राज्यों के पास सीमित साधन है और अपनी अधिकांश विकास योजनाओं के लिए उन्हें केन्द्र की सहायता की आवश्यकता रहती है। इसलिए उन्हें केन्द्र का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ता है। कभी–कभी इन आदेशों के आगे भी झुकना पड़ता हैं।''

केन्द्र राज्य सम्बन्धों की विशेषताएं (Features of Centre-State Relations)

संविधान द्वारा प्रस्तुत केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का विश्लेषण करने से निम्न तथ्य उभरते हैं –

1. **शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार :** संविधान निर्माताओं ने केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बनाया है। वह किसी भी सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। वह अवशिष्ट शक्तियों का उपयोग कर सकती है और राज्यपालों द्वारा राज्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। उसकी आय के साधन अधिक है और वह राज्यों को ऋण भी दे सकती है।
2. **राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य :** संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण इस प्रकार किया गया है कि राज्यों की स्थिति नगरपालिका के बराबर है। जिस प्रकार नगरपालिकाएं राज्य सरकारों पर पूर्णतः निर्भर है, उसी प्रकार राज्य सरकारें भी सभी क्षेत्रों में संघ सरकार पर निर्भर है।

3. **सहयोगी संघवाद :** ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, ''भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संविधान सभा के एक विशिष्ट प्रकार के संघवाद को जन्म दिया है।'' जिसे ए०एच० बर्च ने 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली होती हैं, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होती साथ ही दोनों की सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है।

4. **भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक :** राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की घोषणा किए जाने पर राज्यों की स्वायत्तता को स्थगित किया जा सकता है और इस दशा में राष्ट्रपति राज्य का सारा कामकाज अपने प्रतिनिधि राज्यपाल के माध्यम से चला सकता है। केन्द्र की शक्तियां आपातकाल में नहीं अपितु सामान्यकाल में भी बढ़ाई जा सकती है। अतः भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक कहीं जा सकती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि केन्द्रीय सरकार की अपेक्षाकृत शक्तिशाली स्थिति ने राज्य सरकारों की स्थिति को प्रभावित किया है। किन्तु फिर भी राज्य केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक इकाइयां मात्र नहीं है। ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, ''भारत नई दिल्ली नहीं है बाकि राज्यों की राजधानियाँ भी है। राज्य केन्द्रीय सहायता के आकांक्षी है, किन्तु राज्यों के सहयोग के बिना संघ बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की नीतियों का माध्यम हो सकती है, किन्तु उनकी सहायता के बिना केन्द्रीय सरकार अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सकती। वस्तुतः दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं।''

1.4.4 निष्कर्ष

निस्संदेह केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में कई नई प्रवृत्तियां तथा तनावपूर्ण परिस्थितियां पैदा हुई है, परन्तु यह कहना गलत होगा कि संविधान के अनुच्छेदों के अन्तर्गत केन्द्र और राज्य के सम्बन्ध की समस्या को परिवर्तित राजनीतिक परिस्थिति के अन्तर्गत सुलझाया ना जा सकता हो। संविधान के समुचित कार्यक्रम द्वारा केन्द्र और राज्य के सम्बन्ध को उत्तम बनाया जा सकता है।

अतः हम कह सकते है कि हमारे देश का जैसा संघीय ढांचा है, उसमें केन्द्र और राज्य दोनों की अपनी–अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। दोनों एक–दूसरे की उपेक्षा करके नहीं चल सकते। जो राज्य कुछ मामलों में अधिक स्वायत्तता की मांगे करते हैं, उनका भी हित केन्द्र के अधिकाधिक सशक्त होने में ही है। वास्तव में केन्द्र और राज्य दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं और दोनों मिलकर ही राष्ट्र की उन्नति कर सकते हैं।

1.4.5 मुख्य शब्दावली

- संघ सूची : संविधान के द्वारा शक्तियों का विभाजन करने हेतु तीन सूची निर्धारित की गई है। संघ सूची में राष्ट्रीय महत्व के विषय आते है जिन पर कानून बनाने का अधिकार संसद को है।
- अवशेष विषय : जो विषय तीनों सूचियों में नहीं है, ऐसे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संघीय संसद को है।
- विद्यायी सम्बन्ध : केन्द्र और राज्यों के कानून निर्माण में किस तरह के सम्बन्ध है विद्यायी सम्बन्ध हमें ये जानने में मदद करते है।
- संवैधानिक संकट : जब देश के किसी राज्य में संविधान के अनुसार कार्य ना हो रहा हो अथवा सरकार द्वारा संविधान उल्लंघन किया जा रहा हो।
- अर्न्तराज्यीय परिषद् : ये परिषद् राज्यों के बीच होने वाले विवादों की जांच करके उनके सम्बन्धों में सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करती है।

1.4.6 महत्वपूर्ण प्रश्न

1. केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में उभर रही प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक परीक्षण करें।
2. संघ और राज्यों के वैधानिक, प्रशासनिक और वित्तीय सम्बन्धों का विस्तारपूर्वक वर्णन करो। क्या आप राज्यों को अत्याधिक शक्तियां देने के पक्ष में है ?
3. केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
4. केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में तनाव के कारणों का वर्णन कीजिए। केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों के बारे में सरकारी आयोग की सिफारिशों का उल्लेख कीजिए।
5. संघ व राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध बताइए।

6. केन्द्र–राज्य के वैधानिक सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

7. केन्द्र व राज्य के प्रशासनिक सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

8. सरकारिया आयोग की मुख्य सिफारिशे बताइए।

1.4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डब्ल्यू०एच० मोरिस जोन्स, ''दा गर्वनमैन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', बी०आई० पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
- डी०डी० बसु, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया'', पैनटिश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
- ग्रेनविल आस्टिन, ''इण्डियन कान्स्टीट्यूशन'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966
- रजनी कोठारी, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- रजनी कोठारी, ''कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा०लि०, नई दिल्ली, 1970
- वी०पी० मेनन, ''दा ट्रास्फर ऑफ पॉवर इन इण्डिया'', प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रैस, 1957
- जे०आर० सिवाच, ''डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स'', स्र्टलिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
- रजनी कोठारी, ''स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग'', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
- सी०पी० भाम्भरी, ''दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयरस'', सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
- के०आर० बाम्बवाल, ''दा फॉउडेशन ऑफ इण्डियन फैडरलिज्म'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- पी०आर० ब्राश,''पॉलिटिक्श ऑफ इण्डिया सिन्स इन्डिपेडन्श'', II एडिशन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1994

- एन० चन्द्रहॉक, बियोंड सैक्युरेलिज्य : दा राइट्स ऑफ रिलिजियस माइन्योरटिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, नई दिल्ली, 1999
- ए० कौशिक, ''डैमोक्रेटिक कन्शर्न : दा इण्डियन एक्सपिरियस,'' एलैक, जयपुर, 1994
- बी०एल० फडिया, ''स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', वाल्यूम II, रेडियन्ट, नई दिल्ली, 1984
- एस० कविराज, ''पॉलिटिक्स इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998
- अतुल कोहली, ''डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटैन्ट : इण्डियाज ग्रोईंग क्राईशिश ऑफ गर्वनएबिलिटि'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1991
- अतुल कोहली, एडिशन, ''दा सक्शैश ऑफ इण्डियाज डैमोक्रेशी'', कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 2001
- रजनी कोठारी, ''पार्टी सिस्टम एण्ड इलैक्शन स्टडीज'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
- एम०वी० पायली, ''एन इन्ट्रोडक्शन टू दा कान्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1998
- एम०वी० पायली, ''कान्टीट्यूशनल गर्वनमेण्ट इन इण्डिया'', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1977
- अब्बास, ''इण्डियन गर्वनमेण्ट एण्ड पॉलिटिक्स'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012
- प्रवीन कुमार झा, ''तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति'', पिर्यसन, नई दिल्ली, 2012